P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-1* ISSUE-12* March- 2017
E: ISSN NO.: 2455-0817 Remarking An Analisation

शब्दशक्तिविवेचनम्

अशोक कुमार दुबे
एसोसिएट प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग,
बी0 एस0 एन0 वी0
महाविद्यालय
लखनऊ

सारांश

संस्कृत साहित्य के प्रायः सभी विद्वान् इस बात से सहमत हैं कि शब्द और अर्थ मिलकर काव्य का निर्माण करते हैं। शब्द त्रिविध हैं– वाचक लक्षक और व्य०जक। इसी क्रम में अर्थ भी तीन प्रकार के हैं– वाच्य लक्ष्य और व्यङ्ग्य। इसके अतिरिक्त कुछ लोग 'तात्पर्यार्थ' को भी मानते हैं। शब्द किस प्रकार अर्थ को प्रकट करता है, इस बात पर विचार करके विद्वानों ने शब्द की त्रिविध शक्तियों का विवेचन किया है। शब्द की ये शक्तियॉ क्रमशः अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना के नाम से जानी जाती हैं।

मुख्य शब्द : शब्दशक्तिविवेचनम्

प्रस्तावना

अभिधा अर्थात् वाचक, का लक्षण आचार्य मम्मट ने इस प्रकार बतलाया है–

''साक्षात् सङ्केतितं योऽर्थमभिधत्ते स वाचकः।''

अर्थात् जो शब्द साक्षात् संकेत किये गये अर्थ का बोध कराता है– वह वाचक कहलाता है और उसकी बोधिका शक्ति 'अभिधा' कहलाती है। इसका स्पष्टीकरण करते हुए आचार्य मम्मट ने बताया कि सांसारिक व्यवहार में जिस अर्थ में संकेत ग्रहण किया जाता है, उस अर्थ की प्रतीति ही उस शब्द से होती है–'अस्मात् शब्दादयमर्थो बोद्धव्यः' अर्थात् इस अर्थ का प्रतिपादक यह शब्द है, यह सामाजिक मान्यता ही संकेत है। बिना संकेत के शब्द किसी अर्थ का बोध नहीं कराते। अन्वय–व्यतिरेक सम्बन्ध के द्वारा ही यह सुनिश्चित होता है। अर्थबोध में संकेत का होना अपरिहार्य है– यह अन्वय सम्बन्ध से तथा जिस शब्द का जिस अर्थ में संकेत न हो, वह उसका वाचक नहीं– व्यतिरेक सम्बन्ध से स्पष्ट किया गया है। साक्षात् का अर्थ है– अव्यवहित होना। 'वटोग्रामः' में 'वट– युक्तत्व होना व्यहित संकेतित अर्थ है। मीमांसक शब्द का संकेत जाति में मानते हैं। 'गामानय' में गाय गोत्व जाति से युक्त होने से कोई गाय को ही लायेगा।

इस तरह संकेतित अर्थ जाति,गुण, क्रिया तथा यदृच्छा आदि भेदों से चार प्रकार का होता है–

'संकेतितश्चतुर्भेदो जात्यादि जातिरेव वा'

P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-1* ISSUE-12* March- 2017
E: ISSN NO.: 2455-0817 Remarking An Analisation

मीमांसकों के मत में 'केवल जाति' रूप एक ही प्रकार का संकेतित अर्थ होता है इसका अर्थ यह है कि मीमांसक गुण, क्रिया तथा न इच्छा में भी आदि मानता है, जबकि आचार्य मम्मट ने जाति, गुण, क्रिया तथा यदृच्छा रूप धर्मों में संकेतित अर्थों को माना।

भले ही आनयन, अपनयन आदि रूप अर्थ क्रिया के निर्वाहक होने से प्रवृत्ति–निवृत्ति रूप व्यवहार के योग्य व्यक्ति ही होता है, फिर भी 'आनन्त्य' और व्यभिचार दोष आ जाने के कारण उस व्यक्ति में संकतग्रह मानना उचित नहीं है। 'गौः शुक्लश्चलोडित्थः' में केवल व्यक्ति की उपस्थिति होने पर विषय विभाग नहीं हो सकता। इसलिए व्यक्ति में नहीं अपितु उसकी उपाधि में ही संकेतग्रहण होता है। उपाधि दो प्रकार की है–एक–वस्तुधर्म, दूसरा–वक्तृयदृच्छासंन्निवेशित संज्ञा रूप। वस्तुधर्म भी दो प्रकार का है– 1. सिद्ध 2. साध्य।

सिद्ध वस्तुधर्म भी दो प्रकार का होता है–पदार्थ का प्राणप्रद अर्थात् जातिरूप तथा विशेषाधान हेतु अर्थात् गुणरूप।

'गौः शुक्लश्चलोडित्थः इत्यादौ चतुष्टयीशब्दानां प्रवृत्तिः 'इति महाभाष्यकारः।' इस प्रकार आचार्य मम्मट ने यह प्रतिपादित किया कि संकेतग्रह व्यक्ति में नहीं बल्कि उसकी उपाधिभूत जाति, गुण, क्रिया तथा यदृच्छा रूप धर्मों में होता है। वही साक्षात् संकेतित अर्थ मुख्यार्थ है और उसका बोध कराने में इस शब्द का जो व्यापार है, वही अभिधा व्यापार या अभिधा शक्ति है।

अब 'लक्षणा' का स्वरूप बताते हुए आचार्य मम्मट कहते हैं–

'मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढितोऽथ प्रयोजनात्।
अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत् सा लक्षणारोपिता क्रिया।।'

मुख्यार्थ या वाच्यार्थ का बोध कराने वाली शब्द शक्ति 'अभिधा' है। परन्तु जहॉ कहीं मुख्यार्थ वाक्य को अन्य पदों के साथ अन्वय में बाधा हो या उसमें 'तात्पर्य' की उपपत्ति न हो, वहॉ रूढि या प्रयोजन से मुख्यार्थ से सम्बद्ध जब किसी अन्य अर्थ की प्रतीति होती है तो इस अन्य अर्थ को 'लक्ष्यार्थ' तथा इसकी बोधक शक्ति को 'लक्षणा' कहते हैं। इसके तीन हेतु हैं–1. मुख्यार्थ बाध 2. 'तद्योग' अर्थात् मुख्यार्थ का लक्ष्यार्थ के साथ सामीप्यादि सम्बन्ध 3. रूढि या प्रयोजन। मुख्यार्थ बाध दो प्रकार का है–अन्वयानुपपत्ति तथा तात्पर्यानुपपत्ति। 'गङ्गायां घोषः 'उदाहरण में 'प्रवाह' का बाध लेकर 'तटरूप' अर्थ की प्रतीति 'अन्वयानुयपत्ति' है।

तथा 'काकेभ्यो ददि रक्ष्यताम्' उदाहरण में कौओं के साथ–साथ अन्य दध्युपघातकों से दधि की रक्षा तात्पर्य अर्थ से निकलता है, मुख्यार्थ बाध होकर इसलिए यहॉ तात्पर्यानुपपत्ति ही मानना चाहिए।

इसके समर्थन में नागेशभट्ट की टिप्पणी ध्यातव्य है।

शक्यसम्बन्धोलक्षणाद् अन्वयाद्यनुपपत्तिप्रतिसंधानं च लक्षणा बीजम्

लक्षणा का दूसरा हेतु है– तद्योग अर्थात् मुख्यार्थ का लक्ष्यार्थ के साथ सामीप्यादि सम्बन्ध तथा तीसरा हेतु है–रूढि या प्रयोजन इसमें रूढि का अर्थ है 'प्रसिद्धि' जैसे 'कर्मणि कुशले में कुशल पद दक्ष या प्रवीण अर्थ में रूढ़ हो गया है तथा 'कुशलता' इस मुख्यार्थ का बाध होकर 'चतुर' अर्थ लक्ष्यार्थ है। विवेचकत्व दोनों में उभयनिष्ठ है।

इसी प्रकार 'गङ्गायां घोषः' उदाहरण में 'प्रवाह' रूप मुख्यार्थ का बाध होने पर जो 'तटरूप' अर्थ निकल रहा है। वह पवित्रता आदि प्रयोजन विषयक है। यह समीप्य सम्बन्ध से उत्पन्न अन्य अर्थ

ही अर्थात् मुख्यार्थ से निकलने वाला अमुख्यार्थ ही लक्षणा है। वस्तुतः लक्ष्यार्थ बोधक व्यापार वाच्चार्थ में रहता है, उसका शब्द में आरोप कर लिया जाता है। इस प्रकार मुख्यार्थ बाध, तद्योग तथा रूढि या प्रयोजन से जो अन्य अर्थ लक्षित होता है वह आरोपित व्यापार लक्षणा है।

आचार्य मम्मट ने लक्षणा के 6 भेद बतलाये हैं, पहला–शुद्धा लक्षणा 2. गौणी लक्षणा। पुनः शुद्धा के दो भेद होते हैं पहला उपादान लक्षणा दूसरा लक्षण लक्षणा। इसी प्रकार गौणी के भी दो भेद है पहला सारोपा दूसरा साध्यवसाना। उपादान का लक्षण करते हुए आचार्य मम्मट बताते है–

स्वसिद्धये पराक्षेपः परार्थं स्वसमर्पणम्।

उपादानं लक्षणं चेत्युक्ता शुद्धैव सा द्विधा।।

अर्थात् जहॉ शब्द अपने अन्वय की सिद्धि के लिए अन्य अर्थ का आक्षेप कर लेता है और स्वयं भी बना रहे वहॉ 'उपादान लक्षणा' होती है जैसे 'कुन्ताः प्रविशन्ति' इस उदाहरण में कुन्त शब्द भाला रूप अचेतन का वाचक है उसमें प्रवेश किया अन्वित नहीं होती है इसलिए मुख्यार्थ का बाध होने पर कुन्त आदि शब्द पुरूष पद का आक्षेप कर लेते हैं इस प्रकार 'कुन्तधारी पुरूष प्रवेश कर रहे हैं' यह अर्थ उपादान लक्षणा से निकलता है।

इसके विपरीत जहॉ वाक्य में कोई शब्द दूसरे शब्द के अन्वय की सिद्धि के लिए अपने अर्थ का परित्याग कर अन्य अर्थ का बोद्यक हो जाता है। वहॉ लक्षण लक्षणा होती है। जैसे 'गङ्गायां घोषः' उदाहरण में 'घोष' अधिकरणत्व की सिद्धि के लिए गङ्गा शब्द अपने 'जल–प्रवाह' रूप मुख्यार्थ का परित्याग कर देने से 'तट–रूप' अन्य अर्थ ही बोधित कराता है।

इसी तरह सारोपा और साध्यवसाना का लक्षण बताते हुए आचार्य मम्मट कहते हैं कि जहॉ उपमान और उपमेय कहे स्वरूप का अपह्नव किए बिना समानाधिकरण सम्बन्ध से दोनों शब्दतः कथित हो वहॉ 'सारोपा लक्षणा' होती है।

सारोपान्या तु यत्रोक्तौ विषयी विषयस्तथा''

जैसे 'गौर्वाहीकः' उदाहरण में आरोप्पमाण 'गौ' तथा आरोपविषय 'वाहीक' दोनों शब्दतः उपात्त है अतः यहॉ गौणी सारोपा लक्षणा है।

इसके विपरीत जहॉ आरोप्यमाण उपमान द्वारा आरोप्यविषय उपमेय का निगरण किया जाता है वहॉ गौणी साध्यवसाना लक्षण होती है जैसे 'गौरयम्' में 'गौ' रूप विषयी के बाहर वाहीकरूप विषय का निगरण कर लिया गया अर्थात् दोनों का भेद छिपाकर अभेदारोप किया गया है अतः यहॉ गौणी साध्यवसाना लक्षणा है।

सारोपा– साध्यवसाना भेद सादृश्य से गौणी लक्षणा होती है जबकि सादृश्येत्तर सम्बन्ध से शुद्धा लक्षणा होती है। जेसे 'आयुर्घृतम्' में आरोप्यमाण आयु तथा आरोप्यविषय 'घष्त' दोनों शब्दतः उपात्त है अतः यहॉ शुद्ध सारोपा लक्षणा है। जबकि 'आयुरेवेदम्' ने इदं पद के द्वारा 'घृत' का निगरण कर लिया गया अतः यहॉ शुद्ध साध्यवसाना लक्षणा है। इस प्रकार लक्षणा के षड्विध भेद हैं।

शब्द की तृतीय शक्ति व्य×जना है जिसका लक्षण आचार्य मम्मट ने इस प्रकार बतलाया है–

यस्य प्रतीतिमाधातुं लक्षणा समुपास्यते।।
फलेशब्दैकगम्येऽत्र व्य×जनान्नामपरा क्रिया।
नाभिद्या समयाभावात् हेत्वभान्न लक्षणा।।
लक्ष्यं न मुख्यं नाप्यत्र बाधे योगः फलेन नो।
न प्रयोजनमेतस्मिन् न च शब्दः स्खलद्गतिः।।
एवमप्यनवस्था स्याद् या मूलक्षयकारिणी।

P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-1* ISSUE-12* March- 2017
E: ISSN NO.: 2455-0817 Remarking An Analisation

प्रयोजनेन सहितं लक्षणीयं न युज्यते।।

इस प्रकार शब्द की तीसरी शक्ति व्य×जना को स्पष्ट करते हुए आचार्य मम्मट बताते हैं कि जिस प्रयोजन विशेश की प्रतीति कराने के लिए लाक्षणिक शब्द का आश्रय लिया जाता है, केवल शब्द से ही गम्य अनुमान आदि से नहीं—उस फल या प्रयोजन के लिए व्य×जना के अतिरिक्त शब्द का और कोई व्यापार नहीं होता।'गङ्गायां घोषः' उदाहरण में लाक्षाणिक शब्द का प्रयोग इस हेतु से किया गया है कि उससे शैत्य पावनत्वादि किसी प्रयोजन की प्रतीति हो सके। यह प्रयोजन कहीं गूढ़ तथा कहीं अगूढ़ व्यंग्य के रूप में होता है किन्तु इसकी लाक्षणिक शब्द की सर्वत्र प्रतीति होती है। कोई अनुसान आदि अन्य प्रमाण इसकी प्रतीति कराने में सफल नहीं है—'नाभिद्या समयाभावात्' अर्थात् समय या संकेत का ग्रहण न होने के कारण प्रयोजन की प्रतीति कराने में अभिद्याा नामक शब्द व्यापार समर्थ नहीं है, क्योंकि 'गङ्गायां घोषः' इत्यादि उदाहरण में जो पावनत्वादि धर्म, तट में प्रतीत होते हैं, उनमें 'गङ्गादि' शब्दों का संकेत नहीं किया गया है अर्थात् अभिद्या से उनका ज्ञान नहीं हो सकता।

लक्षणा के तीनों हेतुओं में से प्रत्येक के अभाव में लक्षणा भी नहीं हो सकती। मुख्यार्थवाध के अन्तर्गत 'गङ्गा' पद के तटरूप अर्थ की प्रतीति होने के बाद जो शैत्य—पावनत्वादि धर्म की प्रतीति होती है। यदि उसे शैत्य—लक्ष्यार्थ मान लें तो उससे पूर्व उत्पल 'तटस्थ' अर्थ को मुख्यार्थ मानना पड़ेगा परन्तु यह लक्ष्यार्थ भव्य है, मुख्यार्थ नहीं हो सकता। फिर भी यदि मुख्यार्थ मान ही लिया जाय तो लक्षणा होने के पूर्व उसका बाध होना चाहिए। यह बाध भी नहीं होता क्योकि 'तट ' पर 'घोष' तो रहता ही है, अतः लक्षणा होने का प्रश्न ही नहीं उठता। 'गङ्गातटे घोषः' को मुख्यार्थ मानने पर इसका बाध न होने से लक्षणा न हो सकती न व्य×जना ही।

लक्षणा का दूसरा कारण'लक्ष्यार्थ' का मुख्यार्थ के साथ सम्बन्ध' है। यदि शैत्य—पावनत्वादि धर्मों में लक्ष्यार्थ माना जाय तो 'तट' को मुख्यार्थ मानना होगा। उस स्थिति में मुख्यार्थ रूप 'तट' के साथ लक्ष्यार्थ रूप शैत्य—पावनत्वादि का सम्बन्ध होना चाहिए परन्तु शैत्य—पावनत्व का समय 'गङ्गा' प्रवाह के साथ है, 'तट' के साथ नहीं, इसलिए लक्षणा का दूसरा हेतु भी सम्भव नहीं।

लक्षणा का तृतीय हेतु रूढ़ि या प्रयोजन' भी यहॉ नहीं क्योंकि शैत्य—पावनत्वादि को यदि यहॉ लक्ष्यार्थ माने तो उसमें अन्य किसी को प्रयोजन मानना होगा जो कि अनवस्था प्रसंग में सम्भव नहीं है।

'लक्ष्यं न मुख्यं नाप्यत्र बाधे योगः झलेन नो' उत्पादि कारिका में स्खलद् मतिः का अभिप्राय यह है कि गङ्गा शब्द, शैत्य पावनत्व रूप प्रयोजन को बोधित कराने में बाधित अर्थ नहीं है। बिना मुख्यार्थ बाध के ही वह शैत्य पावनत्व को व्यक्त कर सकता है, मुख्यार्थ बाध के होने पर 'शैत्य—पावनत्व' को नहीं अपितु 'तट' को बोधित करता है।

प्रश्न उठता है कि यदि यह माना जाय कि पावनत्वादि से युक्त तट ही लक्ष्यार्थ से उपस्थित होता है, तो क्या हानि है। इसके उत्तर में आचार्य मम्मट कहते हैं कि प्रयोजन के सहित पावनत्वादि 'तट' को लक्ष्यार्थ मानना उचित नहीं है क्योंकि 'ज्ञानस्यविषयो ह्यन्यः फलमन्यदुदाहृतम्। अर्थात् ज्ञान का विषय, ज्ञान के फल से भिन्न होता है। 'विषय' ज्ञान का कारण होता है इसलिए उसकी स्थिति ज्ञान से पहले रहती है तथा फल, ज्ञान का कार्य होता है, इसलिए उसकी उत्पत्ति ज्ञान के बाद होती है।

P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-1* ISSUE-12* March- 2017
E: ISSN NO.: 2455-0817 Remarking An Analisation

लक्षणाजन्य ज्ञान के विषय 'तटादि' और उसके फल शैत्य पावनत्व आदि की स्थिति भी अलग है।

उन दोनों की समकालीन उत्पत्ति नहीं हो सकती । इसलिए पावनत्वादि प्रयोजन के साथ 'तट रूप' लक्ष्यार्थ मानना युक्तिसंङ्गत नहीं है। इस सन्दर्भ में वैयक्तिक और मीमांसक दोनों स्वीकार करते हैं कि ज्ञान का विषय और उसका फल दोंनों ही अलग–अलग है। 'घटज्ञानवान्नहम' इस रूप ज्ञान के फल को स्वीकार करते हैं जबकि मीमांसक 'घट' नैयायिक अनुव्यवसाय रूप इस विषय में ज्ञानता रूप फल को स्वीकार करता है। इसमें अन्तर केवल इतना है कि मामांसक 'घट ज्ञान' के फल प्रकटता' को घट का धर्म मानता है जबकि नैयायिक 'अनुव्यवसाय' रूप फल को विषय का धर्म न मानकर आत्मा का धर्म मानता है। अर्थात् लक्षणाजन्य ज्ञान का विषय 'तटादि' रूप अर्थ तथा 'शैत्य' पावनत्वादि' फल का विषय एक दूसरे से नितान्त भिन्न हैं। इस प्रकार शैव्य पावनत्वादि तथा तटादि दोनों को लक्ष्यार्थ मानना युक्ति सङ्गत नहीं है।

निष्कर्ष

इस प्रकार शब्द की तीनों शक्तियों का विशिष्ट महत्त्व है यदि ये तीनों न होती तो शायद हम एक ही ढंग से अपनी अभिव्यक्ति कर पाते। इसलिए ये तीनों शब्द शक्तियॉ संप्रेषण की अनन्य आधार हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. साहित्यदर्पण–आचार्य विश्वनाथ
2. काव्यप्रकाश– आचार्य–मम्मट
3. काव्य प्रकाश–आचार्य विश्वेश्वर
4. साहित्यदर्पण–डॉ0 कमला देवी।